IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

औपनिवेशिक शासनकाल में भारतीय प्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण

डॉ0 श्रवण कुमार ठाकुर
एम0 ए0 पीएच0डी0 इतिहास विभाग,ल0ना0मि0वि0 दरभंगा।
ग्राम–नारायणपुर, पोस्ट–कोठिया,भाया–झंझारपुर
जिला–मधुबनी–बिहार

सार–संक्षेप

प्रस्तुत शोध पत्र ब्रिटिश सरकार का भारतीय प्रेस के प्रति दमनात्मक दृष्टिकोण (1799–1910) को लिखने का मूल उद्देश्य यह बताना है कि किस प्रकार ब्रिटिश काल में भारतीय प्रेस के विकास में ब्रिटिश सरकार ने अवरोध उत्पन्न किए। क्योंकि अंग्रेजो को यह भय था कि कही प्रेस उनकी शासन करने की स्वार्थकारी नितियों को उजागर न कर दे और भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना न पनप उठे। इस डर से उन्होंने भारतीय समाचार पत्र पत्रिकाओं पर समय–समय पर दमानात्मक प्रतिबंध के बावजूद भी भारतीय समाचार पत्र पत्रिकाओ ने धीरे धीरे विकास किया। इन प्रतिबंधो के बावजूद भी सामचार पत्रों तथा पत्रिकाओं ने भारतीयों में देश भक्ति तथा राष्ट्रीयता की भावना जगान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रेस के योगदान का महत्व हमें मुख्यत राष्ट्रीय आन्दोलनों से ज्ञात होता है।

प्रस्तावना

भारत समाचार पत्रों का इतिहास यूरोपीय लोगों के आने के साथ–2 सारम्भ हुआ। पुर्तगाली पहले लोग थे जो मुद्रणालय (छापारवाना) भारत में लाए और 1557 में गोआ के पादरियों ने पहली पुस्तक भारत में छापी। 1684 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बम्बई में एक छापारवाना लगाया। समाचार पत्रों का आरम्भ 1780 ई0 में जेम्स आगस्टस हिक्की ने दी बगाल गजट नामक समाचार पत्र से किया। शुरू में इन समाचार पत्रो का उद्देश्य केवल यूरोपीय लोगो का मनोरंजन करना था। एस समय लोकमत के बिगड़ने का कोई भय नहीं था। अतः आरम्भ में समाचार पत्रों को नियन्त्रण में रखने के लिए कोई कानून नहीं बने थे। परन्तु धीरे–धीरे स्थिति में परिवर्तन आना शुरू हो गया। भारत में जैसें–जैसे राष्ट्रवाद एव प्रेस का विकास हुआ, उसी अनुपात में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समाचार पत्रों पर प्रतिबंध एवं अकुंश लगाया। प्रारम्भ से ही कम्पनी के अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि उनके कुप्रशासन और शोषणकारी नीतियों को पर्दाफाश समाचार पत्रों द्वारा हो। इस लिए समाचार पत्रों पर अंकुश लगाना आवश्यक समझा। इस उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने 1799 से 1910 तक जो प्रेस अधिनियम पारित किए उन का वर्णन इस प्रकार हैः–

“लार्ड वैलेजली ने 1799 में सरकारी सेसर (सवाद नियन्त्रक) की नियुक्ति की जिसकी कर्तव्य था प्रकाशनार्थ प्रत्येक वस्तु की जांच करना। फ्रांस के आक्रमण के भय से वेलेजली यह सहन नहीं कर सकता था कि कोई समाचार पत्र ऐसे तथ्य प्रकाशित करे जो उसकी फ्रांस अथवा भारतीय रिवासतों के विरूद्व किसी दुर्बलता को

प्रकट कर दे। उसने 1799 में समाचार पत्रों का परिक्षण अधिनियम पारित कर दिया और समाचार पत्रों पर युद्ध कालीन सेन्सर लागू कर दिया।"[1]

1. समाचार पत्र को सम्पादक मुद्रक और स्वामी का नाम स्पष्ट रूप से छापना पडता था।
2. प्रकाशक को प्रकाशित किए जाने वाले सभी तत्वों को सरकार के सचिव के सम्मुख पूर्व–परिक्षण के लिए भेजना होता था। इन नियमों को भंग करने पर तुरन्त उद्धासन का दण्ड मिलता था। 1807 मे यह अधिनियम पात्रिकाओं पैम्फलेट तथा पुस्तको सभी पर लागू किया।

1818 ई का नियम–

लार्ड हेस्टिग्ज (1813–1823) ने इस नियम को कठोरता से लागू नहीं किया और 1818 में प्रेस सेंसर शिप को समाप्त कर दिया गया परन्तु सामान्य नियम बनाकर उन विषयों की चर्चा पर रोक लगा दी जिनके कारण सरकार के अधिकार एवं जनहित को किसी भी रूप में क्षति पहुचने की आशंका हो। इससे प्रेस ने जो राहत की सांस ली, उससे पत्रों के विकास को कुछ बल मिला, जैसें 1822 में बांबे समाचार को प्रकाशन शुरू हुआ। 1818 के नियम के अनुसार सम्पादको को निम्न लिखित विषयों पर विचार प्रकट नहीं करने थे।[2]

- कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्ज के कार्य अथवा इंग्लैण्ड के उन अधिकारियों के कार्य जो
- भारत सरकार से सम्बन्धित है।
- वे विषय जो गर्वनर–जनरल,उसकी कौसिल के मैबरों सर्वोच्च न्यायालय के
- न्यायालय के न्यायाधीशों आदि से सम्बधित हो।
- उन विषयों को न छापना जिनसे स्थानीय लोगो मे कोई भय अथवा शंका उत्पन्न हो। इन रोको ये यह स्पष्ट है कि लार्ड हेस्टिम्स इस तथ्य को अच्छी तरह जानते थे कि यदि पत्रों पर से सम्पूर्ण रूप से सारे नियन्त्रण हटा लिए जाए तो निदेशक मण्डल की स्वीकृत प्राप्त न होगी। उन्होंने अपने मन्तव्यों में यह स्पष्ट कर दिया कि मै यह चाहता हूं कि प्रशासन में जनमत के प्रति एक जिम्मेदार रूख पैदा हो।
- 1823 ई0 का अनुज्ञाप्ति अधिनियम

1823 में ऐडम्ज 1823–1828 (एमहर्स्ट) ने प्रेस के विरूद्ध फिर दमनात्मक कारवाई शुरू की। इसका राजा राम मोहनराय और उनके राष्ट्रवादी दोस्तों ने विरोध किया, लेकिन सुप्रीम कोर्ट को दी गई उनकी अर्जी नामंजूर हो गई और प्रेस पर प्रतिबंध लगे रहे। यह आदेश दिया गया कि सार्वजनिक सम्वाद तथा सरकारी कारवाईयों की आलोचना से सम्बंधित कोई भी पत्र पुस्तिका या पुस्तक बिना लाईसेंस के प्रकाशित नहीं हो सकती। लाईसेंस प्राप्त करने के लिए एक हलफ नामा देना पड़ता था, जिसमे मुद्रक, प्रकाशक और मालिक का नाम देना जरूरी था। इस लाइसैंस को रद्द भी किया जा सकता था और बिना लाईसैंन्स प्रकाशन पर 400 रूपये जुर्माना होता था। इस प्रकार सरकार की मर्जी के बगैर पुस्तकों तथा पत्रों के मुद्रण और छापे खाने के उपयोग को सजा के योग्य अपराध करार दिया गया।[3]

ऐडम्ज के इस आदेश के समर्थन मे दिए तर्को से यह स्पष्ट था कि यह आज्ञा विशेषता उन समाचार पत्रों के विरूद्ध थी जो भारतीय भाषाओं में प्रकाशित अथवा भारतीयो द्वारा प्रकाशित होते थे। राजा राम मोहनराय को मिरात–उल–अखबार पत्रिका को बन्द होना पडा। ऐडम्ज की आशा के पश्चात केवल तीन बंगला और एक फारसी के समाचार पत्र कलकता से छपते रहे। जे. बकिहांम को भी इंग्लैण्ड में उदासित कर दिया गया।

भारतीय समाचार पत्रों का स्वतन्त्र होना

[1] देसाई ए, आर, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्टभूमि,मैकमिलन भारत लिमिटेड बम्बई 1946
[2] ग्रोवर बी,एल, आधुनिक भारत का इतिहाश, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी नयी दिल्ली 2011
[3] शुक्ल आर,एल, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1998

1835– लार्ड विलियम बेटिक अपने उदार विचारों तथा भारतीयों के साथ न्यायोचित व्यवहार के लिए प्रसिद्व है। उनके शासन काल में समाचार पत्रों के प्रति उदार उष्टिकोण अपनाया गया। परन्तु 1823 मेकं नियम को रद्द करना चार्ल्स मेटकाफ (835–36) के समय ही सम्भव हुआ था। वह भारतीय समाचर पत्रों का मुक्तिदाता कहलाए।

स्पष्टयता सरकारी अफसरों में दो गुट थे। एक गुट यह समढता था। जैसा कि सर टामस मुनरो के शब्दो में कहा जा सकता है कि स्वतन्त्र पत्रकारिता और विदेशीयों का राज ये दोनो बाते परस्पर विरोधी है और दोनो साथ–2 नहीं चल सकती। दूसरे गुट का मत इतना निराशावादी नहीं था। ऐसे लोगो में सर चार्ल्स ट्रेवलियन थे जो इन्डोफीलस के छदम् नाम से पत्रो में लेख लिखते थे और उनका मत वह होता था कि सरकार के अधिकारियों पर जनमत का प्रभाव लाभदायक होता है। उनका कहना यह था कि प्रतिनिधि मूलक विधानसमा की अनुपस्थिति में इसके अलावा और कोई माध्यम नहीं है जिससे

1857 की अनुज्ञप्ति अधिनियम

आपातकालीन स्थिति जो 1857 के विद्रोह के परिणाम स्वरूप हो गई थी से निपटने के लिए लाईसेसिंग अधिनियम बनाया गया। लाईसेंस के बिना मुदणालय स्थापित नहीं किया जा सकता था। किसी भी समय सरकार इसे रद्द कर सकती थी। किसी भ्झी पुस्तक या पत्र का प्रकाशन बीच मं रोका जा सकता था। यह अधिनियम एक वर्ष तक लागू रहा। 1867 का पंजीकरा अधिनियम

1867 का समाचार पत्र तथा पुस्तकों के पंजीकरण अधिनियम संख्या 25 से 1835 के मैटकाफ के अधिनियम को परिवर्तित कर दिया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य मुद्रको तथा प्रकाशको के कार्य को नियन्त्रित करना था। इसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि प्रकाशित होने वाले प्रत्येक समाचार पत्र एवं पुस्तको की प्रतियां सुरक्षित रखी जाए ताकि भविष्य और मुद्रण स्थान का नाम होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त प्रकाशन के एक मास के भीतर पुस्तक को एक प्रति बिना मूल्य के स्थानीय सरकार को देनी होती थी।

देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम 1878

1857 के महान विद्रोह की एक देन शासित और शासक जातियों के सम्बन्धो में कटूता थी। फलस्वरूप अंग्रेजी समाचार पत्र सरकार को सदैव समर्थन करते थे। देशी समाचार पत्र 1857 के पश्चात अभूतपूर्व मात्रा में बढे और वे अधिक मुखर थे तथा सरकार की आलोचना करते थे। भारतीय प्रेस ने 1870 के दशक में मजबूती से पैर जमाना शुरू कर दिया था। लार्ड लिटन (1876–80) के प्रशासन की तो उन्होंने खूलकर आलोचना की, खासकर 1876–77 के अकाल पीडितों के प्रति ब्रिटिश सरकार के अमानवीय रवैये की तो जबरदस्त आलोचना इन अखबारों पर दमन की कुल्हाडी चलाई और 1878 में वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू किया।[4] यह कानून भाषाई अखबारो पर अंकुश लगाने के लिए बनाया गया था ब्रिटिश सरकार को उनकी ओर से ही बड़ा खतरा महसूस हो रहा था।

1908 का समाचार पर अधिनियम

सरकार के विरूद्ध बढती हुई भावनाओं तथा कटु आलोचना को रोकने तथा राजनीति में उग्र दल के उदय एवं विकास से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए 1908 मे ंदी न्यूज पेपर्स ऐक्ट पास किया गया।[5]

1910 का भारतीय समाचार पत्र अधिनियम

[4] चन्द्र,तारा, भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास Vol2 सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरका नई दिल्ली 1969

[5] प्रो0 चन्द्र बिपिन भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990

इसके अधीन जिलाधीश को किसी भी प्रचलित अथवा नए समाचार पत्र के प्रकाशन तथा छापेखाने के मालिक से 500 रूपये से 5000 रूपये की जमानत लेने का अधिकार दे दिया था।[6] यह जमानत किसी भी सरकार विरोधी अथवा आपति जनक लेख लिखने पर जब्द हो जाती थी। पंजीकरण के साथ–2 जमानत रद्द की जा सकती थी। यदि प्रकाशक दोबारा पंजीकरण कराना चाहता है तो उसे इस अधिनियम के अधीन 10,000 रूपये जमानत के रूप में देने पड़ते। परन्तु इसके पश्चात भी यदि समाचार पत्र आपतिजनक सामग्री प्रकाशित करता तो सरकार इसके मुद्णालय समाचार पत्र या पुस्तक की सभ्झी प्रतियों को जब्द कर सकती थी तथा उसका पंजीकरण भी रद्द कर सकती थी। इसके दो महीने के अन्दर
प्रकाशक स्पेशल ट्रिब्युन के पास अपील भेज सकता था। प्रत्येक प्रकाशक को समाचार पत्र की दो प्रतिया बिना मूल्य सरकार को देनी थी और मुख्य बहि शुल्क अधिकारी को आपतिजनक सामग्री को भी जब्द करने का अधिकार दिया गया था।

अंग्रेजी राज्य के विरूद्व लिखने के लिए सबसे प्रसिद्ध मुकदमा तिलक पर चलाया गया। केसरी के कुछ लेखों पर आपति करते हुए तिलक को 6 वर्ष के लिए काला पानी का दण्ड दिया गया। तिलक पर मुकदमा चलाने से सरकार विरोधी अथवा समाचार पत्रो मे कमी नहीं हुई बल्कि सरकार की नेकनीयत पर सन्देह अधिक बढा। उपरोक्त प्रेस एक्टों के बाद 1921,1931 ई0 में भारतीय प्रेस आपातकालीन अधिनियम 1932 ई0 विदेश सम्बन्धी अधिनियम 1934 ई0 में भारतीय राज्य सुरक्षा अधिनियम,1944 ई0 में प्रेस कानून जांच समिति इत्यादि एक्ट पास हुए।

निष्कर्ष

भारतीय प्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण तथा समय–2 पर लगाए प्रतिबंधो से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय प्रेस का इतिहास संघर्षो से पूर्ण है। सभी गवर्नर जनरलों ने प्रेस के प्रति अलग–2 दृष्टिकोण अपनाये जैसें लार्ड वेलजली,लार्ड मिंटो, लार्ड एडम, लार्ड कैनिंग तथा लार्ड लिटन भारतीय प्रेस की स्वतन्त्रता के पक्ष में नहीं थे। वे उस पर प्रतिबंध लगाने को सफल भी हुए। लार्ड उल फिस्टन तथा सर टांमस मुनरो ने इनका समर्थन किया। परन्तु लार्ड हेस्टिगस, चार्ल्स मेटकाफ, मैकाले तथा लार्ड रिपन स्वतन्त्र प्रेस क समर्थक थे। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि दमनकारी प्रतिबंधों के बावजूद प्रेस भारतवासियों को जागृत करने वास्तविकता को रखने तथा स्वतन्त्रता संग्राम की गरिमा को बनाए रखने में सफल रहा। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में प्रेस का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा।

[6] जैन,एम,एस आधुनिक भारत का इतिहास, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993